Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.712
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2607I01VXIVP0001

e-ISSN No. 2394-8426
Monthly Issue
JULY-2026
Issue– VII, Volume–XIV

हिमालयी सुरक्षा और विकास नीतियाँ: एक बहुआयामी सामाजिक-राजनीतिक विमर्श

डा. दलीप सिंह बिष्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभाग प्रभारी
राजनीति विज्ञान विभाग
धर्मानंद उनियाल राजकीय महाविद्यालय नरेन्द्रनगर, टिहरी गढवाल
drdalipbisht@gmail.com

शोध सार :

हिमालय विश्व की सबसे युवा पर्वत श्रृंखलाओं में से एक होने के साथ-साथ दक्षिण एशिया की पारिस्थितिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सामरिक संरचना का आधार है। भारत के लिए हिमालय केवल प्राकृतिक संसाधनों का स्रोत नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, जल सुरक्षा, जैव विविधता तथा आजीविका का भी आधार है। जलवायु परिवर्तन, अनियोजित विकास, तीव्र नगरीकरण, जलविद्युत परियोजनाएँ, पर्यटन, सीमा विवाद तथा प्राकृतिक आपदाएँ हिमालय के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र हिमालयी सुरक्षा और विकास नीतियों का सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि हिमालय का संरक्षण केवल पर्यावरणीय विषय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, लोकतांत्रिक शासन, स्थानीय समुदायों की भागीदारी तथा सतत विकास से जुड़ा हुआ प्रश्न है। शोध का निष्कर्ष है कि हिमालय के लिए ऐसी नीतियाँ आवश्यक हैं जिनमें पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक न्याय, स्थानीय सहभागिता और राष्ट्रीय हितों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके।

मुख्य शब्द: हिमालय, सुरक्षा, सतत विकास, पर्यावरणीय शासन, सामाजिक-राजनीतिक विमर्श, जलवायु परिवर्तन, राष्ट्रीय सुरक्षा।

भूमिका:

हिमालय केवल एक विशाल पर्वत श्रृंखला नहीं है, बल्कि यह एशिया की पारिस्थितिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामरिक जीवनरेखा के रूप में स्थापित है। विश्व की सबसे युवा और सक्रिय पर्वत प्रणालियों में से एक होने के कारण हिमालय का भू-वैज्ञानिक, पर्यावरणीय और सामाजिक महत्व अत्यंत व्यापक है। यह पर्वत श्रृंखला भारतीय उपमहाद्वीप की जलवायु प्रणाली को नियंत्रित करने, मानसूनी गतिविधियों को प्रभावित करने तथा जल संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, यमुना और सतलुज जैसी प्रमुख नदियों का उद्गम हिमालयी क्षेत्र से होता है, जिन पर भारत सहित दक्षिण एशिया के अनेक देशों की कृषि, पेयजल, ऊर्जा उत्पादन और आजीविका व्यवस्था निर्भर करती है। भारत, नेपाल, भूटान, चीन तथा पाकिस्तान सहित अनेक देशों की करोड़ों आबादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र से जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से हिमालय का संरक्षण केवल क्षेत्रीय महत्व का विषय नहीं, बल्कि संपूर्ण एशियाई पर्यावरणीय स्थिरता और मानव सुरक्षा से संबंधित प्रश्न है।

भारत के संदर्भ में हिमालय का महत्व बहुआयामी है। यह एक ओर देश की उत्तरी सीमाओं को प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर जल, वन, जैव विविधता और खनिज संसाधनों का महत्वपूर्ण स्रोत भी है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने हिमालयी क्षेत्रों के विकास को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में शामिल किया। दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सड़क, रेल, संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा, जलविद्युत, पर्यटन तथा रक्षा अवसंरचना के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया। सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़क और संचार नेटवर्क के विकास ने राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत किया, जबकि पर्यटन और ऊर्जा परियोजनाओं ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को नई संभावनाएँ प्रदान कीं। ग्रामीण सड़क योजनाओं और विकास कार्यक्रमों के माध्यम से पर्वतीय क्षेत्रों में नागरिक सुविधाओं की पहुँच बढ़ाने का प्रयास किया गया।

हालाँकि, विकास की इन प्रक्रियाओं ने अनेक नई चुनौतियों को भी जन्म दिया है। हिमालय की भौगोलिक संरचना अत्यंत संवेदनशील और नाजुक होने के कारण अनियोजित निर्माण, वनों की कटाई, जलविद्युत परियोजनाओं का अत्यधिक विस्तार, बढ़ता पर्यटन दबाव और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित उपयोग से पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हुआ है। भूस्खलन, बादल फटना, बाढ़, भूमि धंसाव, हिमनदों का सिकुड़ना और जैव विविधता का ह्रास जैसी समस्याएँ हिमालयी क्षेत्रों में लगातार बढ़ रही हैं। इसके अतिरिक्त, बड़े विकास कार्यों के कारण कई स्थानों पर स्थानीय समुदायों के विस्थापन, पारंपरिक आजीविका में परिवर्तन और सामाजिक असमानताओं की स्थिति भी सामने आई है।

वर्तमान समय में हिमालयी विकास का प्रश्न केवल आर्थिक वृद्धि या अवसंरचना निर्माण तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह पर्यावरणीय न्याय, सामाजिक समानता, स्थानीय अधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ा एक व्यापक सामाजिक-राजनीतिक विमर्श बन चुका है। एक ओर देश की सामरिक आवश्यकताओं और आर्थिक विकास के लिए आधुनिक अवसंरचना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर हिमालय की पारिस्थितिक संवेदनशीलता और स्थानीय समुदायों के हितों की रक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। इसलिए हिमालयी नीति-निर्माण में विकास और संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करना समय की प्रमुख आवश्यकता है।

इस संदर्भ में हिमालयी सुरक्षा और विकास नीतियों का अध्ययन एक बहुआयामी दृष्टिकोण की मांग करता है, जिसमें पर्यावरण विज्ञान, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और सुरक्षा अध्ययन जैसे विभिन्न विषयों को समाहित किया जाए। सतत विकास, वैज्ञानिक योजना, पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन, स्थानीय समुदायों की भागीदारी और जलवायु परिवर्तन के अनुकूल रणनीतियों के माध्यम से ही हिमालय के भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है। अतः हिमालय की सुरक्षा केवल पर्वतीय क्षेत्रों का मुद्दा नहीं, बल्कि भारत और पूरे दक्षिण एशिया के दीर्घकालिक पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक स्थिरता और राष्ट्रीय हितों से जुड़ा एक महत्वपूर्ण विषय है।

शोध के उद्देश्य:

1. हिमालयी सुरक्षा की अवधारणा का सामाजिक एवं राजनीतिक विश्लेषण करना।
2. भारत की हिमालयी विकास नीतियों का मूल्यांकन करना।
3. जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरणीय संकटों के प्रभावों का अध्ययन करना।
4. स्थानीय समुदायों की भूमिका एवं सहभागिता का विश्लेषण करना।
5. सतत एवं समावेशी नीति-निर्माण के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

अनुसंधान पद्धति:

यह शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन हेतु पुस्तकों, शोध-पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, नीति दस्तावेजों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्य का उपयोग किया गया है तथा विषय का विश्लेषण सामाजिक, राजनीतिक तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से किया गया है।

हिमालयी सुरक्षा का बहुआयामी स्वरूप:

(क) राष्ट्रीय सुरक्षा:

हिमालय भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक सुरक्षा कवच है। लगभग 2,500 किलोमीटर से अधिक लंबी हिमालयी पर्वत श्रृंखला भारत की उत्तरी सीमाओं को प्राकृतिक रक्षा प्रदान करती है तथा चीन, पाकिस्तान, नेपाल और भूटान जैसे पड़ोसी देशों के साथ भारत के सामरिक संबंधों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। विशेष रूप से चीन और पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद, वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) तथा नियंत्रण रेखा (LoC) पर समय-समय पर उत्पन्न होने वाले तनाव हिमालय के सामरिक महत्व को और अधिक बढ़ा देते हैं। इस कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कों, सुरंगों, पुलों, हवाई पट्टियों, संचार नेटवर्क तथा अन्य रणनीतिक अवसंरचनाओं का विकास भारत की सुरक्षा नीति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। सीमा सड़क संगठन (BRO) जैसी संस्थाओं द्वारा

सीमावर्ती क्षेत्रों में तीव्र गति से आधारभूत संरचना का निर्माण किया जा रहा है, जिससे सैनिकों की त्वरित तैनाती, रसद आपूर्ति और आपातकालीन परिस्थितियों में सैन्य प्रतिक्रिया की क्षमता में वृद्धि हुई है। साथ ही आधुनिक निगरानी प्रणाली, उपग्रह प्रौद्योगिकी, ड्रोन, संचार तंत्र और डिजिटल सीमाई प्रबंधन ने सीमा सुरक्षा को अधिक प्रभावी बनाया है।

हालाँकि, राष्ट्रीय सुरक्षा के उद्देश्य से किए जा रहे इन विकास कार्यों के साथ अनेक पर्यावरणीय और सामाजिक चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सड़क चौड़ीकरण, सुरंग निर्माण, वनों की कटाई तथा विस्फोटक तकनीकों के उपयोग से भूस्खलन, भूमि धंसाव, जल स्रोतों का क्षरण तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय समुदायों के विस्थापन, पारंपरिक आजीविका पर प्रभाव और सांस्कृतिक परिवर्तनों जैसी समस्याएँ भी सामने आती हैं। इसलिए हिमालयी राष्ट्रीय सुरक्षा को केवल सैन्य शक्ति के संदर्भ में नहीं देखा जा सकता, बल्कि इसे पर्यावरणीय सुरक्षा, मानवीय सुरक्षा और सतत विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। दीर्घकालिक राष्ट्रीय सुरक्षा तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब सीमाई अवसंरचना का विकास वैज्ञानिक पर्यावरणीय आकलन, आपदा जोखिम न्यूनीकरण, स्थानीय समुदायों की सहभागिता तथा पारिस्थितिक संतुलन को ध्यान में रखकर किया जाए। इस प्रकार हिमालय की सुरक्षा केवल सीमाओं की रक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, सामाजिक स्थिरता, क्षेत्रीय विकास और राष्ट्रीय हितों के मध्य संतुलन स्थापित करने की एक समग्र प्रक्रिया है।

(ख) पर्यावरणीय सुरक्षा:

हिमालय विश्व के सबसे संवेदनशील पर्वतीय पारिस्थितिक तंत्रों में से एक है और इसे जैव विविधता, जल संसाधनों तथा जलवायु संतुलन का महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है। यह पर्वत श्रृंखला केवल भारत ही नहीं, बल्कि पूरे दक्षिण एशिया के लिए जीवनदायिनी नदियों; गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, यमुना और सतलुज का उद्गम स्थल है, जिन पर करोड़ों लोगों की पेयजल, सिंचाई, ऊर्जा उत्पादन तथा आजीविका निर्भर करती है। किंतु वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, हिमनदों के तीव्र पिघलने, अनियंत्रित वनों की कटाई, अवैज्ञानिक सड़क एवं भवन निर्माण, खनन गतिविधियों तथा अनियोजित पर्यटन के कारण हिमालय की पारिस्थितिकी गंभीर संकट का सामना कर रही है। हिमनदों के सिकुड़ने से भविष्य में जल उपलब्धता प्रभावित होने की आशंका बढ़ रही है, जबकि अल्पकाल में हिमनदीय झीलों के फटने, अचानक बाढ़ तथा भूस्खलन जैसी आपदाओं का जोखिम भी बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त, वनों के क्षरण से जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और अनेक दुर्लभ वनस्पतियों तथा वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं। तीर्थ एवं पर्यटन स्थलों पर बढ़ती मानव गतिविधियाँ, प्लास्टिक प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की कमी तथा जल स्रोतों का प्रदूषण पर्यावरणीय असंतुलन को और अधिक गंभीर बना रहे हैं। उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य हिमालयी राज्यों में बार-बार आने वाली बाढ़, बादल फटना, भू-स्खलन और भूमि धंसाव जैसी घटनाएँ यह संकेत देती हैं कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए बिना हिमालय की दीर्घकालिक सुरक्षा संभव नहीं है। इसलिए पर्यावरणीय सुरक्षा को केवल प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तक सीमित न मानकर जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन, वैज्ञानिक भू-योजना, आपदा जोखिम न्यूनीकरण, वनीकरण, जैव विविधता संरक्षण तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी से जोड़ना आवश्यक है। एक समग्र पर्यावरणीय नीति ही हिमालय की पारिस्थितिक स्थिरता तथा भविष्य की जल और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकती है।

(ग) सामाजिक सुरक्षा:

हिमालयी क्षेत्रों की सामाजिक सुरक्षा वहाँ निवास करने वाले समुदायों के जीवन, आजीविका, सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई है। इन क्षेत्रों के अधिकांश निवासी कृषि, बागवानी, पशुपालन, वानिकी, हस्तशिल्प तथा पर्यटन जैसे पारंपरिक व्यवसायों पर निर्भर हैं। पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उनकी आजीविका प्राकृतिक संसाधनों और स्थानीय पारिस्थितिकी से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है। किंतु तीव्र विकास

परियोजनाएँ, जलविद्युत बाँध, सड़क विस्तार, सुरंग निर्माण तथा पर्यटन के व्यावसायीकरण ने अनेक स्थानों पर स्थानीय समुदायों के विस्थापन, भूमि अधिग्रहण तथा संसाधनों तक उनकी पारंपरिक पहुँच को प्रभावित किया है। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता, बेरोज़गारी, पलायन और सामाजिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। विशेष रूप से युवाओं का रोजगार की तलाश में मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन गाँवों के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को कमजोर कर रहा है। इसके साथ ही पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय भाषाएँ, लोक-संस्कृति, रीति-रिवाज और सामुदायिक जीवन शैली भी धीरे-धीरे प्रभावित हो रही है। महिलाओं की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे जल, ईंधन, कृषि और परिवार की आजीविका के अधिकांश कार्यों का दायित्व निभाती हैं, फिर भी नीति-निर्माण और संसाधन प्रबंधन में उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत सीमित रहती है। सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में यह आवश्यक है कि विकास परियोजनाओं की योजना बनाते समय स्थानीय समुदायों की सहमति, पुनर्वास, उचित मुआवज़ा, आजीविका संरक्षण तथा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को प्राथमिकता दी जाए। सहभागी शासन, विकेंद्रीकृत निर्णय-प्रक्रिया, शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास और स्थानीय संसाधनों पर समुदायों के अधिकार को सुदृढ़ करके ही हिमालयी समाज को सुरक्षित, समावेशी और आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। अतः हिमालयी विकास की सफलता केवल आर्थिक प्रगति से नहीं, बल्कि स्थानीय लोगों के जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक संरक्षण से भी मापी जानी चाहिए।

हिमालयी विकास नीतियों का विश्लेषण:

भारत सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात विशेष रूप से इक्कीसवीं शताब्दी में हिमालयी क्षेत्रों के समग्र विकास को राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में स्वीकार किया है। इस उद्देश्य से सीमा सड़क संगठन द्वारा सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़क, पुल और सुरंगों का निर्माण, चारधाम सड़क परियोजना, भारतमाला परियोजना, जलविद्युत परियोजनाओं का विस्तार, ग्रामीण सड़क विकास कार्यक्रम, रेल संपर्क, डिजिटल संचार नेटवर्क तथा पर्यटन अवसंरचना के विकास जैसी अनेक योजनाएँ संचालित की गई हैं। इन नीतियों का प्रमुख उद्देश्य दुर्गम क्षेत्रों को देश के मुख्य आर्थिक एवं प्रशासनिक ढाँचे से जोड़ना, सीमावर्ती क्षेत्रों में सामरिक क्षमता को सुदृढ़ करना, स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति देना तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य बुनियादी सेवाओं की पहुँच बढ़ाना है। सड़क और परिवहन सुविधाओं के विस्तार से व्यापार, पर्यटन, कृषि विपणन तथा आपदा के समय राहत एवं बचाव कार्यों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। साथ ही, जलविद्युत परियोजनाओं ने ऊर्जा उत्पादन की क्षमता में वृद्धि की है और क्षेत्रीय आर्थिक विकास को नई दिशा प्रदान की है। पर्यटन के विस्तार से स्थानीय लोगों के लिए रोजगार और स्वरोजगार के अवसर भी बढ़े हैं, जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई है और सेवा क्षेत्र का विस्तार हुआ है।

इसके बावजूद इन विकास नीतियों के क्रियान्वयन ने अनेक पर्यावरणीय और सामाजिक प्रश्न भी खड़े किए हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सड़क चौड़ीकरण, सुरंग निर्माण, पहाड़ों की कटाई तथा जलविद्युत परियोजनाओं के लिए नदी तंत्र में हस्तक्षेप के कारण भूस्खलन, भूमि धंसाव, वनों का क्षरण, जैव विविधता में कमी तथा प्राकृतिक जल स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है। अनियोजित निर्माण और पर्यावरणीय प्रभावों के पर्याप्त आकलन के अभाव में कई क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन कमजोर हुआ है, जिससे प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता और आवृत्ति में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, कुछ विकास परियोजनाओं के कारण स्थानीय समुदायों का विस्थापन, पारंपरिक आजीविका पर प्रभाव, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा संसाधनों के असमान वितरण जैसी सामाजिक समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों के संदर्भ में यह चुनौती और अधिक गंभीर हो जाती है, क्योंकि हिमालय का पारिस्थितिक तंत्र अत्यंत संवेदनशील और नाजुक है। इसलिए हिमालयी विकास नीतियों का मूल्यांकन केवल आर्थिक लाभ या अवसंरचनात्मक उपलब्धियों के आधार पर नहीं किया जा सकता, बल्कि इनके पर्यावरणीय, सामाजिक और दीर्घकालिक प्रभावों का भी समग्र आकलन आवश्यक है। भविष्य की नीतियों में सतत विकास, वैज्ञानिक पर्यावरणीय प्रभाव आकलन, स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी, आपदा-जोखिम न्यूनीकरण, जलवायु-अनुकूल योजना तथा

पारिस्थितिक संरक्षण को समान महत्व दिया जाना चाहिए। विकास और संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करके ही हिमालयी क्षेत्रों में समावेशी, सुरक्षित और दीर्घकालिक विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

सामाजिक-राजनीतिक विमर्श:

हिमालयी विकास का प्रश्न केवल आर्थिक प्रगति या पर्यावरण संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक-राजनीतिक विमर्श का विषय है, जिसमें राज्य, स्थानीय समुदाय, पर्यावरण, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास के विभिन्न हित आपस में जुड़े हुए हैं। वर्तमान समय में हिमालयी विकास के संदर्भ में दो प्रमुख दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। पहला दृष्टिकोण तीव्र आर्थिक विकास, सामरिक अवसंरचना, औद्योगिक विस्तार, जलविद्युत परियोजनाओं, सड़क एवं रेल संपर्क तथा पर्यटन को राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा की अनिवार्य आवश्यकता मानता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सीमावर्ती क्षेत्रों में आधुनिक आधारभूत संरचना का विकास राष्ट्रीय एकता, आर्थिक समृद्धि, निवेश, रोजगार सृजन तथा सीमाई सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। सड़क, सुरंग, पुल, हवाई अड्डे और संचार सुविधाओं के विस्तार से न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति मिलती है, बल्कि प्राकृतिक आपदाओं के समय राहत एवं बचाव कार्यों तथा सैन्य गतिविधियों को भी अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

इसके विपरीत दूसरा दृष्टिकोण हिमालय की पारिस्थितिक संवेदनशीलता, पर्यावरणीय संरक्षण, स्थानीय समुदायों के अधिकार, सांस्कृतिक विरासत तथा सतत विकास को प्राथमिकता देता है। इस विचारधारा के समर्थकों का तर्क है कि अनियोजित विकास, अंधाधुंध निर्माण, वनों की कटाई, जलविद्युत परियोजनाओं का अत्यधिक विस्तार तथा पर्यटन का अनियंत्रित व्यावसायीकरण हिमालय के नाजुक पारिस्थितिक तंत्र को गंभीर क्षति पहुँचा रहा है। इससे भूस्खलन, भूमि धंसाव, जल स्रोतों का क्षरण, जैव विविधता में कमी, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों में वृद्धि तथा स्थानीय समुदायों के विस्थापन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। उनका मानना है कि विकास की प्रत्येक परियोजना में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन, स्थानीय समुदायों की पूर्व सहमति, पारदर्शिता तथा सामाजिक न्याय को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। विशेष रूप से महिलाओं, आदिवासी एवं पर्वतीय समुदायों की सहभागिता के बिना कोई भी विकास नीति दीर्घकालिक रूप से सफल नहीं हो सकती।

सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से हिमालयी विकास का वास्तविक समाधान इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच संतुलन स्थापित करने में निहित है। एक ओर राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक प्रगति और आधारभूत संरचना का विकास आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय स्थिरता, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, स्थानीय समुदायों के अधिकार तथा सांस्कृतिक पहचान की रक्षा भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। अतः नीति-निर्माण की प्रक्रिया सहभागी, पारदर्शी और वैज्ञानिक होनी चाहिए, जिसमें केंद्र एवं राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, वैज्ञानिक संस्थानों, पर्यावरण विशेषज्ञों तथा नागरिक समाज की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए। विकास परियोजनाओं के लिए कठोर पर्यावरणीय मानकों का पालन, जलवायु-अनुकूल योजना, आपदा जोखिम न्यूनीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग तथा स्थानीय ज्ञान को नीति का अभिन्न अंग बनाना आवश्यक है। इस प्रकार हिमालयी विकास का सामाजिक-राजनीतिक विमर्श यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक और दीर्घकालिक विकास वही है जो आर्थिक उन्नति, राष्ट्रीय सुरक्षा, पर्यावरणीय संरक्षण और सामाजिक न्याय के बीच संतुलित समन्वय स्थापित कर सके।

निष्कर्ष:

हिमालय भारत की प्राकृतिक, पारिस्थितिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सामरिक संरचना का आधार है और इसकी सुरक्षा देश के दीर्घकालिक विकास एवं राष्ट्रीय हितों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है। यह पर्वत श्रृंखला केवल भौगोलिक सीमा या प्राकृतिक संसाधनों का भंडार नहीं है, बल्कि करोड़ों लोगों की जल, खाद्य, ऊर्जा और आजीविका सुरक्षा का प्रमुख स्रोत भी है। साथ ही, हिमालय भारत की उत्तरी सीमाओं की रक्षा, जलवायु संतुलन, जैव विविधता संरक्षण तथा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किंतु वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, हिमनदों का तीव्र पिघलना, अनियोजित शहरीकरण, अवैज्ञानिक अवसंरचना निर्माण, वनों की कटाई,

प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा बढ़ती पर्यटन गतिविधियों ने हिमालय की पारिस्थितिकी को गंभीर चुनौतियों के सामने खड़ा कर दिया है। इसके अतिरिक्त, सीमावर्ती क्षेत्रों में बढ़ती भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और सामरिक आवश्यकताओं ने विकास एवं सुरक्षा के प्रश्न को और अधिक जटिल बना दिया है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिमालयी विकास को केवल आर्थिक प्रगति या आधारभूत संरचना के विस्तार के संदर्भ में नहीं देखा जा सकता। विकास और पर्यावरण संरक्षण को परस्पर विरोधी अवधारणाएँ मानने के बजाय उन्हें एक-दूसरे के पूरक के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। यदि विकास योजनाओं में पर्यावरणीय संतुलन, स्थानीय समुदायों के अधिकार, सांस्कृतिक संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की उपेक्षा की जाती है, तो दीर्घकाल में वही विकास सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय संकटों का कारण बन सकता है। इसलिए प्रत्येक विकास परियोजना में वैज्ञानिक पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन, आपदा जोखिम विश्लेषण, जलवायु-अनुकूल योजना, पारदर्शी प्रशासन तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय और सार्थक भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। विशेष रूप से महिलाओं, आदिवासी एवं पर्वतीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और अनुभव को नीति-निर्माण में समुचित स्थान देना हिमालयी शासन को अधिक प्रभावी और न्यायसंगत बना सकता है।

अतः हिमालय की सुरक्षा और विकास के लिए एक समन्वित, बहु-विषयक और सहभागी नीति-दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा, पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके। केंद्र और राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, वैज्ञानिक संस्थानों, पर्यावरण विशेषज्ञों तथा नागरिक समाज के बीच प्रभावी समन्वय हिमालयी नीति की सफलता का प्रमुख आधार होगा। साथ ही, सतत विकास लक्ष्यों, जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन, आपदा प्रबंधन, हरित प्रौद्योगिकी तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को भविष्य की विकास रणनीतियों का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए। अंततः यह कहा जा सकता है कि हिमालय की सुरक्षा केवल पर्वतीय क्षेत्रों का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह भारत की पर्यावरणीय स्थिरता, आर्थिक समृद्धि, सामाजिक कल्याण और राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ा एक व्यापक राष्ट्रीय दायित्व है। हिमालय के संरक्षण और संतुलित विकास के बिना भारत के सतत एवं समावेशी भविष्य की कल्पना अधूरी रहेगी।

सुझाव :

सतत विकास आधारित नीति-निर्माण:

हिमालयी क्षेत्रों में सभी विकास परियोजनाओं को सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप संचालित किया जाए, ताकि आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बना रहे।

वैज्ञानिक पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (EIA) को सुदृढ़ करना:

सड़क, सुरंग, जलविद्युत, पर्यटन तथा अन्य अवसंरचनात्मक परियोजनाओं के लिए कठोर एवं पारदर्शी पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन अनिवार्य किया जाए तथा विशेषज्ञों की अनुशंसाओं का प्रभावी ढंग से पालन सुनिश्चित किया जाए।

स्थानीय समुदायों की सहभागिता बढ़ाना:

नीति-निर्माण, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन तथा विकास परियोजनाओं में स्थानीय समुदायों, विशेषकर महिलाओं, आदिवासी एवं पर्वतीय समाज की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए, ताकि विकास अधिक समावेशी और न्यायसंगत बन सके।

जलवायु परिवर्तन अनुकूलन एवं आपदा प्रबंधन को प्राथमिकता:

हिमालयी क्षेत्रों में हिमनदों के संरक्षण, भूस्खलन रोकथाम, जल स्रोतों के पुनर्जीवन, वनीकरण तथा आधुनिक आपदा पूर्वानुमान एवं चेतावनी प्रणाली को सुदृढ़ किया जाए, जिससे प्राकृतिक आपदाओं के जोखिम को कम किया जा सके।

हरित पर्यटन एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण:

अनियंत्रित पर्यटन के स्थान पर पर्यावरण-अनुकूल (Eco-tourism) पर्यटन को बढ़ावा दिया जाए। प्लास्टिक प्रदूषण पर नियंत्रण, अपशिष्ट प्रबंधन, जल स्रोतों का संरक्षण तथा जैव विविधता की रक्षा के लिए कठोर नियम लागू किए जाएँ।

समन्वित हिमालयी नीति एवं अंतर-राज्यीय सहयोग:

हिमालयी राज्यों के बीच समन्वित विकास नीति विकसित की जाए तथा केंद्र और राज्य सरकारों के सहयोग से एक दीर्घकालिक हिमालय संरक्षण एवं विकास रणनीति तैयार की जाए। साथ ही, वैज्ञानिक अनुसंधान, आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा सीमा क्षेत्रों के संतुलित विकास को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।

संदर्भ सूची:

1. नौटियाल, शिवानन्द; 1991: गढ़वाल की वनसम्पदा और पर्यावरण, सुलभ प्रकाशन लखनऊ।
2. नेगी, प्रीतम सिंह; 1994: उत्तराखण्ड हिमालय, वनविनाश: कारण और उपाय, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी।
3. बिष्ट, नारायण सिंह; 1981: उत्तराखण्ड हिमालयकी अर्थव्यवस्था, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी।
4. मिश्र, रमेशचंद्र, 2018: *पर्यावरण और सतत विकास,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. जोशी, वी.के., 2015: *जलवायु परिवर्तन और भारत की नीति,* उत्तरायण पब्लिकेशन, देहरादून।
6. त्रिपाठी, नीलम, 2021: *भारत में पर्यावरणीय न्याय और विधि व्यवस्था,* ज्ञान गंगा, नई दिल्ली।
7. बिष्ट, दलीप सिंह, 2022: जल संकट: वर्तमान समय की चुनौती, *सुरभि इंटरनेशनल पीयर रिव्यूड जर्नल,* अंक-60, वॉल्यूम-1।
8. सिंह, अरविन्द कुमार: हिमालय बचाना है तो भागीरथ बनना होगा, अमरउजाला, नवम्बर, 26, 1995.
9. चतुर्वेदी, कौशल किशोर; 1997: जैव-विविद्दता का संरक्षण: कानूनी प्रावधान, प्रतियोगिता विकास, मार्च।
10. सरला देवी; 1991: संरक्षण एवं विनाश, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल।
11. शर्मा, अतुल (संम्पादक), 1991: पर्यावरण और वन संरक्षण समस्या एवं समाधान, तक्षशिलाप्रकाशन, दिल्ली।
12. शर्मा, अजय कुमार, 2017: *जलवायु परिवर्तन और सामाजिक प्रभाव*: भारत अध्ययन केंद्र, नई दिल्ली।
13. मिश्रा, प्रिया, 2019: *जैव विविधता संरक्षण और स्थानीय समुदाय.* वाराणसी: भारत पर्यावरण फाउंडेशन।
14. राणा, विकास, 2015: *पर्यावरणीय न्याय और शासन,* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली।
15. भारत सरकार, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, 2023: *भारत वन स्थिति रिपोर्ट.* नई दिल्ली।
16. नीति आयोग, 2018: *भारतीय हिमालयी क्षेत्र के सतत विकास पर कार्यदल की रिपोर्ट.* नई दिल्ली।
17. उत्तराखंड राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (USDMA), 2022: *उत्तराखंड आपदा जोखिम न्यूनीकरण रिपोर्ट,* देहरादून।
18. शिवा, वंदना, 2008: *पृथ्वी लोकतंत्र,* नवान्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
19. जोशी, महेश चन्द्र, 2019: *हिमालय: पर्यावरण, विकास और चुनौतियाँ,* रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
20. सिंह, के. एस., 2017: *भारतीय हिमालय : समाज, संस्कृति और विकास,* कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली।
21. पंत, जी. बी., 2018: *जलवायु परिवर्तन और भारतीय हिमालय.* नई दिल्ली: भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएसएसआर)।